



समलैंगिकता: सामाजिक नैतिकता बनाम संवैधानिक सर्वोच्चता

drishtiiias.com/hindi/printpdf/homosexuality-social-ethics-vs-constitutional-supremacy

मानव सभ्यता के इतिहास में कुछ ऐसे मौके आते हैं, जब मानवता अपनी सम्पूर्ण गरिमा के साथ मुस्कुरा उठती है। विकासमान मानव समाज के प्रवाह-काल में कुछ ऐसे फैसले आते हैं, जब हाशिये पर फेंक दिए गए इंसानों को समाज की मुख्य धारा में शामिल करने का रास्ता साफ़ होता है और उन्हें उनके अस्तित्व का अहसास कराया जाता है। आज़ाद भारत के लोकतांत्रिक इतिहास में भी कई ऐसे निर्णय आए हैं जिनसे हमारी विविधता, मानवीय गरिमा और संवैधानिकता का अहसास होता है। उन्हीं में से एक है समलैंगिकता और धारा 377 पर आया सुप्रीम कोर्ट का हालिया फैसला। यह फैसला न्यायिक सुनवाई के इतिहास में एक मील का पत्थर माना जा रहा है। मील का पत्थर इसलिए, क्योंकि इसमें सुप्रीम कोर्ट के पाँच जजों की संवैधानिक पीठ ने एकमत से समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर किया है।

- बता दें कि संवैधानिक पीठ तभी अस्तित्व में लायी जाती है जब संविधान की व्याख्या का प्रश्न हो या राष्ट्रपति द्वारा पूछे गए सवाल पर विचार का मामला हो। संविधान के अनुच्छेद 145(3) के अनुसार यह पीठ सुप्रीम कोर्ट में ही स्थापित की जा सकती है और इसमें कम-से-कम पाँच या उससे ज्यादा न्यायाधीश शामिल होंगे। इस तरह नवतेज सिंह जोहर बनाम भारतीय संघ के केस में समलैंगिकता जैसे विवादास्पद मुद्दे पर एकमत से दिया गया संवैधानिक पीठ का यह फैसला ऐतिहासिक है।
- कई बार फैसले सिर्फ संवैधानिक सर्वोच्चता या मानवीय गरिमा की रक्षा के कारण ही महत्वपूर्ण नहीं होते बल्कि, जजों की तार्किक टिप्पणी के कारण भी विशिष्ट हो जाते हैं। इस मायने में भी चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा, जस्टिस एम खानविलकर, जस्टिस रोहिंगटन एफ़ नरीमन, जस्टिस डी वाई चंद्रचूड़ और जस्टिस इंदु मल्होत्रा को इतिहास में याद किया जाएगा।
- माना जा रहा है कि यह फैसला संविधान की आत्मा, चेतना, धड़कनों का विस्तार करते हुए समाज को समावेशी बनाने की व्याख्या प्रस्तुत करता है। हालाँकि, इसमें व्यक्ति की निजता, उसकी शख्सियत, उसकी पसंद, उसके यौन संबंध, प्रेम-संबंध, उसकी सोच, उसके अहसास, उसके हमसफ़र, चयन के अधिकार आदि की शानदार व्याख्या हुई है। लेकिन अफ़सोस यह कि 6 सितंबर 2018 से शुरू हुई भारतीय समाज की इस विकास यात्रा में सरकार का अपना कोई रुख जाहिर नहीं हुआ।
- इस फैसले से LGBTQ उत्साहित हैं, बुद्धिजीवी खुश हैं, धार्मिक तबका नाराज़ है तो सरकार चुप है। किसी के लिए यह फैसला मानवीय गरिमा, निजता और संवैधानिक सर्वोच्चता का सम्मान है तो किसी के लिए यह भारतीय संस्कृति और पारिवारिक मूल्यों का अपमान है। कोई इसे मानवता का विस्तार बताता है तो कोई इसे नेचुरल लॉ एंड ऑर्डर का तिरस्कार बताता है।

- कहने का अर्थ यह कि फैसला आने के बाद से समलैंगिक संबंध और धारा 377 पर चर्चा का बाजार गर्म है। फैसला चाहे सुप्रीम कोर्ट करे या फिर सरकार, लागू तो अंततः उसे समाज में ही होना है। इसलिए, सवाल उठता है कि समलैंगिकता के क्या मायने हैं और समलैंगिकों को लेकर भारतीय समाज का नजरिया कैसा रहा है? क्या भारतीय समाज की सामूहिक इच्छा इस फैसले से उजागर होती है? क्या इससे सही मायनों में मानवता गौरवान्वित होती है या फिर यह सृष्टि की निरंतरता के विपरीत मान्यता है? प्रश्न यह भी उभरता है कि धारा 377 क्या है और क्या हालिया फैसले ने धारा 377 को पूरी तरह निरस्त कर दिया है? क्या इंसान के नितांत निजी प्रेम-कार्यों में राजसत्ता का हस्तक्षेप जरूरी है? कुल मिलाकर यदि कहें तो मूल सवाल यही है कि क्या संवैधानिक सर्वोच्चता की आड़ में प्राकृतिक सर्वोच्चता को तिलांजली दी जा सकती है? क्या आदर्श की स्थापना में व्यावहारिक कठिनाइयों को नजरअंदाज किया जा सकता है? आखिरकार सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले का मूलाधार क्या है और भारतीय समाज पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा यही जानना हमारा मकसद है।

समलैंगिकता और इससे जुड़े अन्य पहलु

- यूँ तो समलैंगिक शब्द उन लोगों के लिए इस्तेमाल होता है जो प्रेमवश समान लिंग के लोगों के प्रति आकर्षित होते हैं। लेकिन, यह कोई पूर्ण परिभाषा नहीं है। फिर भी सामान्य रूप में यही माना जा सकता है कि समलैंगिकता का अर्थ किसी व्यक्ति का समान लिंग के लोगों के प्रति यौन और रोमांसपूर्वक रूप से आकर्षित होना है। नर का मादा और मादा का नर के प्रति आकर्षित होना और प्रेम संबंध बनाना हेट्रोसेक्सुअल कहा जाता है और इनकी तादाद सर्वाधिक है। लेकिन जीवधारियों, खासकर मनुष्य प्रजाति में एक छोटा वर्ग ऐसा भी है जिसका आकर्षण बिंदु इनसे अलग होता है। जैसे पुरुष का पुरुष के प्रति आकर्षण और प्रेम-संबंध होमोसेक्सुअल कहलाता है और महिला का महिला के प्रति आकर्षण और प्रेम-संबंध लेस्बियन कहलाता है।
- इसके अलावा कुछ लोग अपने से समान और विपरीत, दोनों लिंगों के प्रति आकर्षित होते हैं उन्हें बायोसेक्सुअल कहा जाता है। कुछ लोग शारीरिक रूप से पैदा तो पुरुष या मादा के रूप में होते हैं किन्तु उनकी मनोदशा अपने लिंग के विपरीत होती है। इसलिए वे स्वयं लिंग परिवर्तित कर अपने मनोनुकूल प्रेम संबंध बनाते हैं और इसे ट्रांससेक्सुअल कहा जाता है।
- जहाँ तक QUEER का संबंध है तो ऐसे लोग अपने सेक्सुअल ओरियेंटेशन के बारे में स्योर नहीं होते हैं। इन सबको एक साथ LGBTQ कहा जाता है और यह कुल भारतीय आबादी के लगभग 8 फीसद यानी लगभग साढ़े 10 करोड़ हैं। सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले से इन्हीं समुदायों को सीधे तौर पर राहत मिली है। जब हम राहत की बात करते हैं तो यहाँ यह जानना भी जरूरी है कि LGBTQ को राहत भारतीय दंड विधान संहिता की उस धारा 377 से प्रदान की गई है जिसके तहत इनके प्रेम-संबंधों को अपराध माना जाता था।
- ब्रिटिश काल में बने Indian Penal Code के Section 377 में अप्राकृतिक अपराध की बात की गई है। इस कानून की झलक उस "बगरी एक्ट" में देखी जा सकती है जो 1533 में इंग्लैंड में अस्तित्व में आया था। इस तरह धारा 377 में कहा गया है कि "जो भी व्यक्ति स्वेच्छा से किसी भी पुरुष, महिला या पशु के साथ प्राकृतिक व्यवस्था से हटकर शारीरिक संभोग करता है, वह अप्राकृतिक अपराध का दोषी होगा और उसे आजीवन कारावास या दस साल की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।" यही व्यवस्था लगभग डेढ़ सौ वर्षों से चली आ रही थी।

इस प्रावधान को लेकर चली न्यायिक उठा-पटक

- दरअसल, इस कानून का गाहे-ब-गाहे विरोध भी हुआ है। सबसे सशक्त चुनौती इसे नाज़ इंडिया फाउंडेशन की ओर से 2001 में मिली, जब दिल्ली हाई कोर्ट में इसके सन्दर्भ में याचिका दायर की गई। हालाँकि, शुरूआती दौर में दिल्ली हाई कोर्ट ने इस याचिका को सुनवाई योग्य नहीं माना था। लेकिन, बाद में सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर दिल्ली हाई कोर्ट ने इस पर सुनवाई की और 2009 में याचिकाकर्ता के पक्ष में फैसला देते हुए LGBTQ के प्रेम-संबंधों को अपराधिक कृत्य की श्रेणी से बाहर कर दिया। इस फैसले से सार्वजनिक दायरे में हलचल मचना स्वाभाविक था। इसलिए कुछ धार्मिक-सांस्कृतिक संगठन दिल्ली हाई कोर्ट के फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट जा पहुँचे। लिहाजा, सुप्रीम कोर्ट ने दिसंबर 2013 में दिल्ली हाई कोर्ट के फैसले को पलट दिया और समलैंगिक संबंधों को अपराध घोषित कर दिया। इस तरह गेंद सरकार के पाले में डाल दी गई। अपनी राजनैतिक मजबूरियों के कारण केंद्र सरकार इस मामले में असमंजस की स्थिति में बनी रही और इसी दौरान सुप्रीम कोर्ट ने एक पुनर्विचार याचिका को निरस्त कर दिया।
- लेकिन, प्राकृतिक और अप्राकृतिक और शह और मात के इस खेल में LGBTQ समुदाय ने मानवीय गरिमा की अपनी लड़ाई जारी रखी। फरवरी 2016 में उन्हें तब एक बड़ी सफलता तब हाथ लगी जब क्यूरेटिव पेटिशन पर सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई कर इस मामले को संवैधानिक पीठ के पास भेजा। बताते चलें कि सभी अपील और पुनर्विचार याचिकाओं के खारिज हो जाने के बाद क्यूरेटिव पेटिशन वह आखिरी हथियार होता है जिसके तहत राष्ट्रपति या सुप्रीम कोर्ट किसी मामले को निर्णायक रूप से सुनने पर राजी होते हैं। कुल मिलाकर समलैंगिकता से जुड़े इस क्यूरेटिव पेटिशन को न सिर्फ स्वीकार किया गया बल्कि, इसपर संवैधानिक पीठ बनाकर फैसला देने को भी कहा गया।
- इसी बीच अगस्त 2017 में निजता के अधिकार पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला आया जिसमें उन्होंने दो वयस्क व्यक्ति के यौन संबंध को भी निजता के अधिकार के तहत रक्षित माना। यानी यहाँ तक आते-आते सुप्रीम कोर्ट ने भी यह मन बना लिया था कि समलैंगिकता पर गंभीर सुनवाई की दरकार है। सरकार ने भी सुप्रीम कोर्ट के द्वारा ही इस मुद्दे को सुलझाए जाने पर अपनी सहमति जताई। इस तरह लगभग दो दशकों की लंबी कानूनी लड़ाई के बाद आखिरकार यह क्रांतिकारी फैसला आया। संभव है समाज का बहुसंख्यक वर्ग इस फैसले से खुश न हो। लेकिन, यह फैसला व्यक्ति की निजता, मानवीय गरिमा और संवैधानिक नैतिकता को सम्मानित करने वाला जरूर है।

इस मुद्दे के मद्देनजर भारतीय सामाजिक सरोकार और इससे जुड़े अन्य पहलु

- अगर समलैंगिकता को लेकर भारतीय समाज के नजरिये की बात करें तो, ज्यादातर यह निगेटिव ही रहा है। हालाँकि, इसके पीछे बहुत तार्किक-वैज्ञानिक आधार नहीं दिया गया है। यही कारण है कि यह बहुसंख्यक आचार-विचार का अहंकार मात्र लगता है। लेकिन, इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि ऐसे लोगों की उपस्थिति समाज में हमेशा से ही रही है।
- इतिहास की बात करें तो दुनिया की ज्यादातर संस्कृतियों में समलैंगिकता मौजूद रही है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री मार्गरेट मीड के अनुसार आदिम समाजों में समलैंगिकता प्रचलन में थी। रोमन सभ्यता में भी इसे बुरा नहीं माना गया, वहीं प्राचीन यूनान में तो इसे सम्मानित स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार 'विकृतिः एव प्रकृतिः', यानी जो अप्राकृतिक दीखता है वह भी प्राकृतिक है और इसे भारत में समलैंगिकता के प्रति सहिष्णुता का प्रतीक माना गया।
- रामायण, महाभारत से लेकर विशाखदत्त के मुद्राराक्षस, वात्स्यायन के कामसूत्र तक में समलैंगिकता और किन्नरों का उल्लेख है। हालाँकि, इन्हें सहज सम्मानित स्थान प्राप्त न था, पर कुछ उदाहरणों को छोड़कर इनके अतिशय अपमान का भी उल्लेख नहीं मिलता है। फिर भी कालांतर में समाज पर बहुसंख्यकवाद और धर्मवाद का प्रभाव इतना गहराता चला गया कि सेक्सुअल माइनॉरिटी हाशिये पर जाने को मजबूर हो गई। यूरोप में भी प्रबोधनवाद के दौरान नैतिकता का आग्रह इतना प्रबल रहा कि समलैंगिकता को अपराध की दृष्टि से देखा जाने लगा। कहने का अर्थ यह कि मानवीय सभ्यता के शुरूआती दौर में समलैंगिकता न कोई अप्राकृतिक काम था न ही कोई अपराध, लेकिन धीरे-धीरे बहुसंख्यक धार्मिक वर्चस्व में समाज की इस सहिष्णुता ने दम तोड़ दिया।

- समलैंगिकता के विरोध में जिस तर्क को सबसे ज्यादा प्रचारित किया जाता है उसमें सबसे महत्वपूर्ण है कि यह अप्राकृतिक कार्य है। इसलिए, यह सामाजिक नैतिकता के विरुद्ध आचरण है। हालाँकि, इस तर्क का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। फिर भी एक बहुत बड़ा तबका सदियों से यही मान्यता पालता आया है। यह बात सही है अधिकांश आबादी विपरीत लिंगों के प्रति आकर्षित होती है और इसी तरह के प्रेम-संबंधों में सहजता महसूस करती है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि वो दूसरों को भी इसी कसौटी पर कसकर समाज का मानक निर्धारित करे। हमें यह समझना होगा कि अलगता का मतलब असामान्यता नहीं होता। हमसे अलग आचार-विचार-व्यवहार रखने वाला इंसान भी normal ही है न कि abnormal. इसलिए उन्हें अप्राकृतिक कहना मुनासिब नहीं है।
- बारहवीं सदी में बराहमिहिर ने अपने ग्रंथ वृहत जातक में कहा था कि समलैंगिकता पैदाइशी होती है और इस आदत को बदला नहीं जा सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों से भी यह बात साबित हो चुकी है कि समलैंगिकता अचानक पैदा हुई आदत या विकृति नहीं है, बल्कि यह पैदाइशी होती है। अगर इस आधार पर देखें तो फिर चंद्र मुट्ठी भर लोग यदि बहुसंख्यकों के प्रेम-आकर्षण से अलग हैं तो, क्या वे अपराधी हो गए? यदि इस कुतर्क पर चला जाये तब तो भारत में हिन्दू धर्म से अलग उपासना विधि मानने वाले सारे लोग भी अपराधी होते और भारत कभी सेकुलर देश ही नहीं बन पाता। इसलिए, दरअसल खोट समलैंगिक आचरण में नहीं बल्कि बहुसंख्यक ठसक में है। इसी के वशीभूत सामाजिक नैतिकता का तकाजा समलैंगिकता को अप्राकृतिक और दंडनीय मानता है। लिहाजा, भारतीय समाज को इस मिथ्या चेतना से बाहर आने की जरूरत है। सिर्फ सामाजिक नैतिकता और बहुसंख्यकवाद किसी आजाद कौम की नियति तय नहीं कर सकते बल्कि यह काम संविधान का है।

संवैधानिक नैतिकता

- संवैधानिक नैतिकता का तकाजा हर एक नागरिक के मौलिक अधिकारों की गारंटी करना है न कि जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक या भाषाई बहुसंख्यकों की अनर्गल चाहत की रक्षा करना। समाज का मानक रूढ़ियों और बहुसंख्यक मान्यताओं से प्रेरित हो सकता है लेकिन संविधान की कसौटी मानवीय गरिमा और समानता के सिद्धांत से संचालित होती है। इसलिए संवैधानिक नैतिकता के बरक्स सामाजिक नैतिकता का अड़चन खड़ा करना अनुचित है।
- जहाँ तक सवाल है समलैंगिकता के पक्ष में न्यायालय के फैसले के मूलाधार का तो यकीनन इसके पीछे मानवीय गरिमा का सम्मान और मौलिक अधिकारों की रक्षा का भाव निहित है। दो वयस्कों की आपसी सहमति से बनने वाले प्रेम-संबंधों में सत्ता का हस्तक्षेप व्यक्ति के समानता, लिंग निरपेक्षता, निजता और चयन के अधिकारों का हनन है। फिर चाहे वह समलैंगिक संबंध ही क्यों न हो, उसे आपराधिक मानना संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 में वर्णित मौलिक अधिकारों की अवहेलना करने जैसा है।
- यह न केवल भारतीय संविधान के समानता, लिंग-निरपेक्षता और जीवन व व्यक्तिगत आजादी के सिद्धांत के विपरीत था बल्कि आधुनिकता के इस दौर में भी भेदभाव आधारित समाज का पर्याय था। जिस तरह जन्म के आधार पर जाति-व्यवस्था और रंग के आधार पर गोरों के साथ बुरा बरताव करना गलत है, उसी तरह समलैंगिकों को भी क्रिमिनल मानना गलत है। यदि जाति-व्यवस्था और छुआछूत के खात्मे के लिए संवैधानिक प्रावधान किया जा सकता है तो फिर समलैंगिकों के साथ होने वाले भेदभाव के खिलाफ कानून बनाना अनर्थकारी कैसे हो सकता है?
- यह समाज के मूल्यों को रूढ़ियों से मुक्त करने की दिशा में एक प्रगतिशील कदम है। न्यायालय ने 2014 में ही किन्नरों के सशक्तिकरण हेतु उन्हें थर्ड जेंडर के रूप में मान्यता प्रदान की थी और 2017 में निजता के अधिकार में यौन संबंध और इसके चयन को भी समाहित किया था तो, उसका अगला पड़ाव समलैंगिक यौन संबंध को अपराध की श्रेणी से बाहर करना ही था। धारा 377 न्याय-समता और दंड-समता के सिद्धांत के प्रतिकूल थी। विधि आयोग की 121वीं समीक्षा रिपोर्ट में भी धारा 377 को हटाने का सुझाव दिया गया था।

- जाहिर है, न्यायालय का यह फैसला न सिर्फ मानवीय गरिमा बल्कि, संवैधानिक सर्वोच्चता को भी स्थापित करने वाला है। आज दुनिया के 26 देशों में समलैंगिकता को कानूनी मान्यता प्राप्त है तो फिर भारत क्यों अपने साढ़े दस करोड़ नागरिकों को क्रिमिनल स्टेटस में रखता। लिहाजा, यह साढ़े दस करोड़ समलैंगिकों को नागरिक अधिकारों से पूरी तरह लैस करने वाला दूरगामी फैसला है। यहाँ यह भी गौर करने लायक है कि इस फैसले के तहत धारा 377 को बहुत हद तक बेअसर जरूर कर दिया गया है, लेकिन इसे पूरी तरह निरस्त नहीं किया है। पशुओं के साथ अप्राकृतिक यौन संबंध के संदर्भ में यह धारा कायम रहेगी।

व्यावहारिक धरातल पर हालिया न्यायिक फैसला

- हम चाहे कुछ भी कह लें, लेकिन सैद्धांतिक रूप से समलैंगिकता को नाजायज़ या आपराधिक कृत्य साबित नहीं कर सकते। हाँ, लेकिन व्यावहारिक रूप से इसके सामाजिक प्रतिफलन के दोष से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। इससे स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं और वैवाहिक-पारिवारिक मूल्यों के क्षरण की आशंका को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि न्यायालय ने अभी बस समलैंगिकता को आपराधिक कृत्य मानने से इनकार किया है न कि समलैंगिक विवाह को स्वीकृति दी है।
- इसके अलावा सैन्य संगठनों में भी इसके प्रतिकूल प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता है। इस फैसले के बाद भारतीय सेना को अपने कायदे बदलने की दरकार होगी, क्योंकि अब तक सेना में समलैंगिक संबंधों की सख्त मनाही थी और इसकी पुष्टि होने पर कोर्ट मार्शल का प्रावधान था। लिहाजा, कहा जा सकता है कि सर्वोच्च अदालत का यह फैसला मानवीय गरिमा के अनुकूल है। लेकिन, कुछ हद तक व्यावहारिकता के प्रतिकूल भी जरूर है। फिर भी आदर्श समाज की स्थापना में व्यावहारिक कठिनाइयों को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता है।

समस्त चर्चा का सार यही है कि सर्वोच्च अदालत के इस फैसले ने मानवीय गरिमा की महत्ता को तो स्थापित किया है, लेकिन भारतीय समाज की आन्तरिकता को भी प्रभावित किया है। हालाँकि, इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि कोई भी बदलाव शुरुआत में कष्टकारी ही होता है। लेकिन इसका दूरगामी प्रभाव भारतीय समाज के लिए सकारात्मक हो, यही उम्मीद है। दूसरी बात यह कि समाज या व्यवस्था मानव के नैसर्गिक अधिकार कभी थाली में परोस कर आसानी से नहीं देती है। बल्कि, उसके लिए मानव को हमेशा जूझना पड़ता है। न हमें अभिव्यक्ति की आजादी आसानी से मिली है न ही कोई दूसरे अधिकार। LGBTQ समुदायों को भी अपने इस अधिकार के लिए लंबी लड़ाई लड़नी पड़ी है, इसलिए इसकी खास अहमियत है। तीसरी और सबसे जरूरी बात यह कि दरअसल मानव सभ्यता का विकास एक-रेखीय नहीं होता बल्कि, बहुआयामी होता है। समाज की अधिसंख्य आबादी जिस चीज़ को सही मानती हो वही पूरे समाज का भी नैतिक आदर्श हो, यह जरूरी नहीं। आधुनिक लोकतंत्र की अवधारणा में समाजसत्ता, धर्मसत्ता या राजसत्ता के ऊपर जनसत्ता की महत्ता स्थापित की गई है और हर एक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को संरक्षण दिया गया है। एक सशक्त और जीवंत लोकतंत्र में सामाजिक नैतिकता, संवैधानिक नैतिकता को कम या खत्म नहीं कर सकती। मजबूत लोकतंत्र की यह निशानी है कि वह विविधता का सम्मान करे और संवैधानिक सर्वोच्चता को कायम रखे। डेमोक्रेसी की लेजिटीमिटी इसी में है कि वह मेजोरिटी के साथ-साथ माइनोरिटी को भी फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर दे। भारत इस विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, इसलिए भारत पर लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवीय गरिमा को स्थापित करने की नैतिक जिम्मेवारी सबसे ज्यादा है। हमें यह समझना होगा कि प्रदत्त मौलिक अधिकारों को वापस नहीं लिया जा सकता है। यानी यह नॉन-रेट्रोग्रेसिव होता है। ऐसा प्रयास भी करना मानवाधिकार के साथ खिलवाड़ होगा। बहरहाल, इस फैसले को सामाजिक नैतिकता के तराजू पर न तौलते हुए मानवीय गरिमा और संवैधानिक नैतिकता के तकाज़े पर देखना ज्यादा समीचीन होगा।

[ऑडियो आर्टिकल के लिए क्लिक करें.](#)